International Journal of Web of Multidisciplinary Studies
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal)
website: *https://ijwos.com*
Volume 3 Issue 2 , Feb 2026
OPEN ACCESS
E-ISSN : 3049-2424
DOI: https://doi.org/10.71366/ijwos03022608483

डॉ. अंबेडकर का नारीवादी दृष्टिकोण : पितृसत्ता से कानूनी स्वतंत्रता तक का सफर

डॉ. उर्मिला कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर अम्बेडकर विचार एवं सामाजिक कार्य विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

Article Info

Article History:

Published:28 Feb 2026

Publication Issue:
Volume 3, Issue 2
February-2026

Page Number:
552-560

Corresponding Author:
डॉ. उर्मिला कुमारी

Abstract:

भारतीय समाज में नारी की स्थिति सदियों से सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संरचनाओं द्वारा नियंत्रित रही है, जिसमें पितृसत्ता ने एक केंद्रीय भूमिका निभाई है। इस व्यवस्था के अंतर्गत महिलाओं को प्रायः परिवार और समाज में द्वितीयक स्थान दिया गया, जहाँ उनकी स्वतंत्रता, शिक्षा, संपत्ति के अधिकार और निर्णय लेने की क्षमता सीमित कर दी गई। नारी को 'अधीन', 'निर्भर' और 'संरक्षित' के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिससे उसकी स्वतंत्र पहचान और व्यक्तित्व का विकास बाधित हुआ। यद्यपि आधुनिक युग में नारीवाद के विभिन्न आयामों पर चर्चा होती है, किन्तु भारतीय परिप्रेक्ष्य में इस विमर्श की जड़ें केवल पश्चिमी विचारधारा तक सीमित नहीं हैं, बल्कि यह देश के अपने सामाजिक–सांस्कृतिक संघर्षों से भी गहराई से जुड़ी हुई हैं। इसी संदर्भ में डॉ. भीमराव अंबेडकर का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। अंबेडकर ने न केवल जाति–व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष किया, बल्कि उन्होंने महिलाओं की दयनीय स्थिति को भी सामाजिक अन्याय का एक प्रमुख अंग माना। उनके विचारों में नारी मुक्ति केवल सामाजिक सुधार का विषय नहीं थी, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक क्रांति का अनिवार्य हिस्सा थी। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जब तक महिलाओं को समान अधिकार, सम्मान और अवसर प्राप्त नहीं होंगे, तब तक किसी भी समाज को वास्तव में प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। डॉ. अंबेडकर का नारीवादी दृष्टिकोण मूलतः समानता, न्याय और स्वतंत्रता के सिद्धांतों पर आधारित था। उन्होंने यह समझा कि पितृसत्ता केवल एक सामाजिक व्यवस्था नहीं है, बल्कि यह एक वैचारिक संरचना है, जो धर्म, परंपरा और कानून के माध्यम से महिलाओं के दमन को वैधता प्रदान करती है। इसलिए उन्होंने इस व्यवस्था को चुनौती देने के लिए कानूनी और संवैधानिक उपायों को आवश्यक माना। भारतीय संविधान के निर्माण में उनकी निर्णायक भूमिका के माध्यम से उन्होंने महिलाओं को समान नागरिक अधिकार, मतदान का अधिकार, और विधिक संरक्षण प्रदान करने की दिशा में ऐतिहासिक कार्य किया।

विशेष रूप से, हिंदू कोड बिल के माध्यम से उन्होंने विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और संपत्ति के अधिकारों में महिलाओं को समानता दिलाने का प्रयास किया। यद्यपि उस समय इस विधेयक का व्यापक विरोध हुआ, फिर भी यह भारतीय नारी के अधिकारों के इतिहास में एक क्रांतिकारी पहल थी। अंबेडकर का यह दृष्टिकोण इस बात को रेखांकित करता है कि वास्तविक नारी मुक्ति केवल सामाजिक जागरूकता से नहीं, बल्कि ठोस कानूनी अधिकारों और संरचनात्मक परिवर्तन से संभव है। इस प्रकार, डॉ. अंबेडकर का नारीवादी चिंतन भारतीय समाज में पितृसत्ता के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक और व्यावहारिक हस्तक्षेप के रूप में सामने आता है। उन्होंने नारी को 'वस्तु' या 'परनिर्भर' इकाई के रूप में नहीं, बल्कि एक पूर्ण 'स्वतंत्र नागरिक' के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। यह अध्ययन इसी दृष्टिकोण को समझने और विश्लेषित करने का प्रयास है, जिसमें यह देखा जाएगा कि किस प्रकार अंबेडकर ने पितृसत्तात्मक संरचनाओं को चुनौती देते हुए महिलाओं को कानूनी और सामाजिक स्वतंत्रता की दिशा में अग्रसर किया।[1]

Keywords: लैंगिक समानता, महिला अधिकार, सामाजिक न्याय, विधिक सशक्तिकरण, शिक्षा का अधिकार

पितृसत्ता और जाति का अंतर्संबंध

पितृसत्ता और जाति का अंतर्संबंध डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर के सामाजिक, वैचारिक और क्रांतिकारी चिंतन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और गहन आयाम है। बाबासाहेब ने भारतीय समाज की संरचना का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया कि

Copyright © 2025 The Author(s) : This is an open access article under the CC BY license (http://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/)

यहाँ महिलाओं का दमन केवल पुरुष–प्रधान मानसिकता का परिणाम नहीं है, बल्कि यह जाति व्यवस्था को बनाए रखने और उसे स्थायित्व प्रदान करने का एक सुनियोजित तंत्र है। उनके अनुसार, पितृसत्ता और जाति व्यवस्था परस्पर पूरक संस्थाएँ हैं, जो एक–दूसरे को मजबूत करती हैं और मिलकर सामाजिक असमानता को स्थायी रूप देती हैं।[2] अंबेडकर ने अपनी प्रसिद्ध रचना *भारत में जातियाँ : उनका तंत्र,* उत्पत्ति और विकास में यह प्रतिपादित किया कि जाति व्यवस्था का मूल आधार एंडोगैमी (अंतरविवाह) है। उनका तर्क था कि यदि किसी समाज में जाति को बनाए रखना है, तो यह आवश्यक है कि विवाह केवल उसी जाति के भीतर हो। इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए महिलाओं की स्वतंत्रता को नियंत्रित करना अनिवार्य बना दिया गया, क्योंकि महिलाएँ ही वह माध्यम हैं जिनके द्वारा जातीय शुद्धता को बनाए रखा जाता है। यदि महिलाएँ स्वतंत्र रूप से विवाह करने लगें, तो जाति की सीमाएँ स्वतः समाप्त हो जाएँगी। इस प्रकार, महिलाओं की देह, उनकी यौनिकता और प्रजनन क्षमता को सामाजिक नियंत्रण का केंद्र बना दिया गया।[3] अंबेडकर ने यह भी स्पष्ट किया कि भारतीय समाज में कई सामाजिक कुरीतियाँ – जैसे बाल–विवाह, सती प्रथा, विधवा–विवाह का निषेध, कन्या–विक्रय, और महिलाओं की शिक्षा पर प्रतिबंध दरअसल इसी जाति व्यवस्था को बनाए रखने के उपकरण थे। उदाहरण के लिए, बाल–विवाह का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि लड़कियाँ कम उम्र में ही विवाह बंधन में बंध जाएँ और उनके पास अपनी पसंद से जीवनसाथी चुनने का अवसर न रहे। इसी प्रकार, विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति न देना इस बात को सुनिश्चित करता था कि वे जाति के बाहर विवाह न कर सकें। सती प्रथा जैसी अमानवीय परंपराएँ भी इस नियंत्रण को चरम सीमा तक ले जाती थीं, जहाँ महिला का अस्तित्व ही समाप्त कर दिया जाता था ताकि जातीय "शुद्धता" पर कोई प्रश्न न उठे। इसके अतिरिक्त, अंबेडकर ने पितृसत्ता की उस संरचना की भी आलोचना की, जिसमें महिलाओं को केवल परिवार और समाज की 'इज्जत' का वाहक माना जाता है। यह धारणा महिलाओं की स्वतंत्रता को सीमित करती है और उन्हें एक वस्तु के रूप में प्रस्तुत करती है, जिसका मुख्य कार्य सामाजिक नियमों का पालन करना है। इस संदर्भ में, उन्होंने यह बताया कि 'सम्मान' की अवधारणा भी जाति व्यवस्था से गहराई से जुड़ी हुई है, जहाँ अंतरजातीय विवाहों को 'सम्मान की हत्या' जैसे अपराधों के माध्यम से रोका जाता है।[4]

अंबेडकर का विश्लेषण यह भी दर्शाता है कि महिलाओं का शोषण एकरूपी नहीं है, बल्कि यह जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर भिन्न–भिन्न रूपों में प्रकट होता है। उच्च जाति की महिलाएँ जहाँ पितृसत्ता के दमन का सामना करती हैं, वहीं दलित और निम्न जाति की महिलाएँ दोहरे ही नहीं, बल्कि तिहरे शोषण का सामना करती हैं–वे जाति, वर्ग और लिंग तीनों स्तरों पर उत्पीड़ित होती हैं। इस प्रकार, अंबेडकर का दृष्टिकोण आधुनिक 'इंटरसेक्शनैलिटी' की अवधारणा के बहुत निकट प्रतीत होता है, जहाँ विभिन्न प्रकार के दमन एक–दूसरे से जुड़े होते हैं और मिलकर अधिक जटिल असमानता उत्पन्न करते हैं।[5] बाबासाहेब के लिए महिलाओं की मुक्ति का प्रश्न केवल लैंगिक समानता तक सीमित नहीं था। उनका मानना था कि जब तक जाति व्यवस्था का उन्मूलन नहीं होगा, तब तक महिलाओं को वास्तविक स्वतंत्रता और समानता प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने शिक्षा को मुक्ति का सबसे प्रभावी साधन माना और महिलाओं को शिक्षित, संगठित और संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने हिंदू कोड बिल के माध्यम से महिलाओं को संपत्ति के अधिकार, विवाह और तलाक में समानता दिलाने का प्रयास किया, जो उस समय के संदर्भ में एक क्रांतिकारी कदम था।[6] अंततः, अंबेडकर का यह स्पष्ट मत था कि पितृसत्ता और जाति व्यवस्था दोनों ही मानवाधिकारों के विरुद्ध हैं और इनका उन्मूलन एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज की स्थापना के लिए अनिवार्य है। उनका दृष्टिकोण केवल सुधारवादी नहीं, बल्कि मूलभूत परिवर्तन की ओर उन्मुख था, जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और कानूनी सभी स्तरों पर बदलाव आवश्यक है। इस प्रकार, अंबेडकर का चिंतन हमें यह समझने में मदद करता है कि महिलाओं की वास्तविक मुक्ति तभी संभव है, जब समाज के सभी दमनकारी ढाँचों विशेषकर जाति और पितृसत्ता को एक साथ चुनौती दी जाए और उन्हें समाप्त किया जाए।[7]

हिंदू कोड बिल : महिलाओं का 'मैग्ना कार्टा'

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर द्वारा प्रस्तुत हिंदू कोड बिल स्वतंत्र भारत के सामाजिक, विधिक और वैचारिक इतिहास में एक क्रांतिकारी मोड़ का प्रतीक है। जब अंबेडकर ने स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री के रूप में कार्यभार संभाला, तब उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती केवल संविधान निर्माण तक सीमित नहीं थी, बल्कि एक ऐसे समाज का निर्माण करना भी था, जहाँ समानता और न्याय केवल सिद्धांत न रहकर व्यवहारिक वास्तविकता बन सके। उन्होंने यह गहराई से महसूस किया कि यदि

भारतीय समाज में महिलाओं को समान अधिकार और सम्मान नहीं दिया गया, तो स्वतंत्रता अधूरी ही रह जाएगी। इसी सोच के तहत हिंदू कोड बिल को तैयार किया गया, जिसका उद्देश्य सदियों पुरानी पितृसत्तात्मक और भेदभावपूर्ण सामाजिक संरचनाओं को कानूनी रूप से चुनौती देना था।[8] यह बिल केवल कानूनों का संकलन नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक सुधार आंदोलन का आधार था, जिसमें विवाह, उत्तराधिकार, दत्तक ग्रहण, और पारिवारिक संबंधों को नए सिरे से परिभाषित करने का प्रयास किया गया। इसे महिलाओं का 'मैग्ना कार्टा' इसलिए कहा गया, क्योंकि जिस प्रकार इंग्लैंड में महान अधिकार–पत्र ने नागरिक अधिकारों की नींव रखी थी, उसी प्रकार यह बिल भारतीय महिलाओं को पहली बार समानता, स्वतंत्रता और गरिमा के अधिकार प्रदान करने की दिशा में एक ऐतिहासिक दस्तावेज था। अंबेडकर का यह प्रयास भारतीय समाज को आधुनिक, लोकतांत्रिक और न्यायसंगत बनाने की दिशा में एक साहसिक और दूरदर्शी पहल थी, जिसने परंपरा और प्रगति के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया।[9]

(i) संपत्ति में अधिकार

हिंदू कोड बिल का सबसे महत्वपूर्ण और दूरगामी प्रभाव डालने वाला प्रावधान महिलाओं को संपत्ति में समान अधिकार प्रदान करना था। परंपरागत हिंदू उत्तराधिकार कानूनों में महिलाओं को, विशेषकर बेटियों को, संपत्ति से लगभग पूरी तरह वंचित रखा गया था। इस व्यवस्था के कारण महिलाएँ आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर रहती थीं, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति भी कमजोर बनी रहती थी।[10] अंबेडकर ने इस असमानता को केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के रूप में देखा। उन्होंने प्रस्तावित किया कि बेटियों को भी पुत्रों के समान पिता की संपत्ति में बराबरी का अधिकार मिलना चाहिए। यह विचार उस समय के समाज के लिए अत्यंत क्रांतिकारी था, क्योंकि यह सीधे–सीधे पितृसत्तात्मक मूल्यों को चुनौती देता था, जहाँ संपत्ति को केवल पुरुषों का अधिकार माना जाता था।[11] इस प्रावधान के माध्यम से अंबेडकर ने महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। आर्थिक स्वतंत्रता महिलाओं के सशक्तिकरण का मूल आधार है इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि महिलाएँ केवल आश्रित न रहकर स्वयं निर्णय लेने में सक्षम बनें। संपत्ति में अधिकार मिलने से न केवल महिलाओं की व्यक्तिगत स्वतंत्रता बढ़ती, बल्कि परिवार और समाज में उनकी स्थिति भी मजबूत होती। इस प्रकार, यह प्रावधान महिलाओं को गरिमा, आत्मसम्मान और सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम था।[12]

(ii) विवाह और तलाक

हिंदू कोड बिल ने विवाह संस्था को एक नई दृष्टि से परिभाषित करने का प्रयास किया, जिसमें समानता, स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांतों को केंद्र में रखा गया। पारंपरिक हिंदू समाज में विवाह को एक पवित्र और अटूट बंधन माना जाता था, जिसमें महिलाओं की भूमिका अधीनस्थ होती थी। पुरुषों को बहुविवाह की अनुमति थी, जबकि महिलाओं के लिए यह पूरी तरह निषिद्ध था।[13] यह असमानता महिलाओं के अधिकारों और गरिमा के विरुद्ध थी। अंबेडकर ने इस व्यवस्था को बदलने के लिए बहुविवाह को अवैध और दंडनीय घोषित करने का प्रस्ताव रखा। यह कदम न केवल विवाह संबंधों में समानता स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण था, बल्कि यह महिलाओं को एक सुरक्षित और सम्मानजनक वैवाहिक जीवन देने का प्रयास भी था। इसके साथ ही, उन्होंने तलाक की व्यवस्था को भी कानूनी मान्यता देने पर बल दिया।[14] तलाक का अधिकार महिलाओं के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण था, क्योंकि पारंपरिक समाज में उन्हें अत्याचार, हिंसा या अपमानजनक परिस्थितियों में भी विवाह संबंध बनाए रखने के लिए मजबूर किया जाता था। अंबेडकर का मानना था कि यदि विवाह समानता और सम्मान पर आधारित नहीं है, तो उसे बनाए रखने का कोई औचित्य नहीं है। तलाक के अधिकार के माध्यम से उन्होंने महिलाओं को यह स्वतंत्रता प्रदान की कि वे अपनी गरिमा और आत्मसम्मान की रक्षा कर सकें। इस प्रकार, विवाह और तलाक से संबंधित प्रावधानों ने महिलाओं को व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आत्मनिर्णय और सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार प्रदान किया, जो उस समय के संदर्भ में अत्यंत प्रगतिशील और क्रांतिकारी था।[15]

(iii) संरक्षण (विधवाओं के अधिकार)

हिंदू कोड बिल में विधवाओं की स्थिति को सुधारने के लिए किए गए प्रावधान भी अत्यंत महत्वपूर्ण थे। पारंपरिक भारतीय समाज में विधवाओं को सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से अत्यंत हीन स्थिति में रखा जाता था। उन्हें

न केवल समाज से अलग–थलग कर दिया जाता था, बल्कि उनके जीवन पर भी कठोर प्रतिबंध लगाए जाते थे– जैसे सादा जीवन जीना, सामाजिक कार्यक्रमों में भाग न लेना, और पुनर्विवाह की अनुमति न होना।[16] अंबेडकर ने इस अमानवीय व्यवस्था को समाप्त करने के लिए विधवाओं को संपत्ति में अधिकार, पुनर्विवाह की स्वतंत्रता और सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार देने का प्रस्ताव रखा। यह केवल कानूनी सुधार नहीं था, बल्कि एक मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित पहल थी, जिसका उद्देश्य विधवाओं को समाज में पुनः गरिमापूर्ण स्थान दिलाना था।[17] विधवाओं को संपत्ति का अधिकार देने से उनकी आर्थिक निर्भरता समाप्त होती और वे आत्मनिर्भर बन पातीं। पुनर्विवाह की अनुमति देकर अंबेडकर ने उनके जीवन को एक नई दिशा देने का प्रयास किया, जिससे वे सामाजिक बंधनों से मुक्त होकर अपने जीवन के बारे में स्वयं निर्णय ले सकें। इस प्रकार, यह प्रावधान विधवाओं के लिए केवल संरक्षण का माध्यम नहीं था, बल्कि उन्हें सम्मान, स्वतंत्रता और समानता दिलाने का एक सशक्त प्रयास था।[18]

हिंदू कोड बिल के ये सभी प्रावधान मिलकर एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। यह बिल केवल महिलाओं के अधिकारों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह भारतीय समाज के पितृसत्तात्मक ढाँचे को मूल रूप से चुनौती देने का प्रयास था।[19] हालांकि उस समय इस बिल का व्यापक विरोध हुआ और इसे अपने मूल स्वरूप में पारित नहीं किया जा सका, फिर भी इसके सिद्धांतों ने आगे चलकर कई महत्वपूर्ण कानूनों–जैसे हिंदू विवाह अधिनियम, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम आदि का आधार तैयार किया। अंततः, अंबेडकर का यह प्रयास यह दर्शाता है कि वे केवल संविधान निर्माता ही नहीं, बल्कि एक महान समाज सुधारक और दूरदर्शी विचारक भी थे। उनका यह दृष्टिकोण आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि यह हमें यह समझने में मदद करता है कि वास्तविक समानता और न्याय तभी संभव है, जब समाज के सभी वर्गों विशेषकर महिलाओं को समान अधिकार और अवसर प्रदान किए जाएँ।[20]

नैतिकता और त्याग का उदाहरण

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर के जीवन, चिंतन और राजनीतिक आचरण में नैतिकता, सिद्धांतनिष्ठा और सामाजिक न्याय के प्रति जिस प्रकार की अदम्य प्रतिबद्धता दिखाई देती है, वह उन्हें केवल एक राजनेता नहीं, बल्कि एक महान नैतिक दार्शनिक और सामाजिक क्रांतिकारी के रूप में स्थापित करती है। अंबेडकर के लिए राजनीति कभी भी व्यक्तिगत लाभ, पद या प्रतिष्ठा प्राप्त करने का साधन नहीं रहीय बल्कि यह एक ऐसा सशक्त माध्यम थी, जिसके द्वारा वे भारतीय समाज में व्याप्त गहरी असमानताओं विशेषकर जाति और लिंग आधारित भेदभाव को समाप्त करना चाहते थे।[21] उनके विचारों में स्पष्टता, दृ ष्टि में व्यापकता और कार्यशैली में दृढ़ता का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। हिंदू कोड बिल के संदर्भ में उनका दृ ष्टिकोण इस बात को पूरी तरह प्रमाणित करता है कि वे अपने सिद्धांतों के साथ किसी भी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं थे, चाहे इसके लिए उन्हें कितनी ही बड़ी व्यक्तिगत या राजनीतिक कीमत क्यों न चुकानी पड़े। जब अंबेडकर ने हिंदू कोड बिल को संसद में प्रस्तुत किया, तब यह केवल एक विधेयक नहीं था, बल्कि यह भारतीय समाज की जड़ और रूढ़िवादी संरचनाओं को चुनौती देने वाला एक ऐतिहासिक दस्तावेज था।[22] इस बिल के माध्यम से उन्होंने विवाह, उत्तराधिकार, संपत्ति और पारिवारिक संबंधों में महिलाओं को समान अधिकार दिलाने का प्रयास किया। उस समय भारतीय समाज गहरे पितृसत्तात्मक मूल्यों से संचालित था, जहाँ महिलाओं को द्वितीयक दर्जा दिया जाता था और उन्हें निर्णय लेने की स्वतंत्रता से वंचित रखा जाता था। अंबेडकर ने इस स्थिति को बदलने के लिए कानूनी सुधार को एक अनिवार्य साधन के रूप में देखा। उनका मानना था कि जब तक कानून के स्तर पर समानता स्थापित नहीं होगी, तब तक सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं है। इसलिए हिंदू कोड बिल उनके व्यापक सामाजिक परिवर्तन के एजेंडे का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था, जो महिलाओं की मुक्ति और समानता की दिशा में एक निर्णायक कदम साबित हो सकता था। किन्तु जैसे ही यह बिल सार्वजनिक और संसदीय चर्चा का विषय बना, इसे तीव्र और व्यापक विरोध का सामना करना पड़ा।[23] समाज के परंपरावादी और कट्टरपंथी वर्गों ने इसे अपनी धार्मिक मान्यताओं और सामाजिक परंपराओं के विरुद्ध बताया। उनके अनुसार, यह बिल हिंदू समाज की पारंपरिक संरचना को तोड़ने वाला था और इससे परिवार व्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न हो सकती थी। कई लोगों ने इसे 'पश्चिमी विचारधारा' से प्रेरित बताकर भी इसका विरोध किया। इस विरोध के पीछे केवल धार्मिक भावनाएँ ही नहीं, बल्कि वह सत्ता संरचना भी थी, जो पितृसत्ता के माध्यम से पुरुषों को विशेषाधिकार प्रदान करती थी और जिसे यह बिल सीधे चुनौती दे रहा था। इस प्रकार, हिंदू कोड बिल केवल एक कानूनी सुधार का प्रस्ताव नहीं रह गया, बल्कि यह सामाजिक और वैचारिक संघर्ष का केंद्र बन गया।[24]

संसद के भीतर भी इस बिल को लेकर गहन मतभेद उत्पन्न हो गए। अनेक सांसदों ने इसका विरोध किया और इसे अत्यधिक प्रगतिशील तथा समाज के लिए 'असमय' बताया। इस परिस्थिति में तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू व्यक्तिगत रूप से इस बिल के समर्थन में होने के बावजूद, राजनीतिक दबावों, सामाजिक असहमति और चुनावी समीकरणों के कारण इसे पूरी दृढ़ता के साथ पारित कराने में संकोच करने लगे। सरकार का यह अनिर्णयात्मक रुख अंबेडकर के लिए अत्यंत निराशाजनक था, क्योंकि वे इसे केवल एक विधेयक नहीं, बल्कि महिलाओं के अधिकारों और सामाजिक न्याय के प्रति सरकार की वास्तविक प्रतिबद्धता का परीक्षण मानते थे। जब उन्होंने देखा कि सरकार इस मुद्दे पर निर्णायक कदम उठाने से पीछे हट रही है, तो उनके सामने एक गहरा नैतिक संकट उत्पन्न हो गया।[25] इस परिस्थिति में अंबेडकर के सामने दो स्पष्ट विकल्प थे – पहला, वे सत्ता में बने रहें और समझौता करते हुए इस बिल के कमजोर रूप को स्वीकार कर लेंय और दूसरा, वे अपने सिद्धांतों और मूल्यों के प्रति ईमानदार रहते हुए सत्ता का त्याग कर दें। अंबेडकर ने बिना किसी हिचकिचाहट के दूसरा विकल्प चुना। 27 सितंबर 1951 को उन्होंने कानून मंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया। यह निर्णय केवल एक राजनीतिक कदम नहीं था, बल्कि यह एक गहरी नैतिक और वैचारिक घोषणा थी, जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि उनके लिए सत्ता का कोई महत्व नहीं है यदि वह सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना में बाधा बनती है। उनका यह इस्तीफा भारतीय राजनीति में नैतिक साहस और सिद्धांतनिष्ठा का एक अद्वितीय उदाहरण बन गया।[26] अंबेडकर का यह त्याग इस तथ्य को उजागर करता है कि वे सत्ता के मोह से पूर्णतः मुक्त थे। उन्होंने यह सिद्ध किया कि वास्तविक नेतृत्व वही है, जो अपने सिद्धांतों के प्रति अडिग रहता है और परिस्थितियों के दबाव में आकर अपने मूल्यों से समझौता नहीं करता। एक मंत्री पद का त्याग करना उस समय के संदर्भ में अत्यंत बड़ा कदम था, क्योंकि यह न केवल व्यक्तिगत प्रतिष्ठा और अधिकारों का परित्याग था, बल्कि यह राजनीतिक प्रभाव और भविष्य की संभावनाओं को भी त्यागने के समान था। इसके बावजूद अंबेडकर ने यह निर्णय लिया, जो उनकी नैतिक दृढ़ता, आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय के प्रति उनकी गहरी निष्ठा को दर्शाता है। यह त्याग इस बात का प्रमाण है कि वे केवल विचारों के स्तर पर ही नहीं, बल्कि अपने कर्मों के माध्यम से भी उन मूल्यों को जीते थे, जिनकी वे वकालत करते थे।[27]

यदि इस घटना को विश्व इतिहास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो यह अत्यंत दुर्लभ और प्रेरणादायक उदाहरण के रूप में सामने आती है। बहुत कम ऐसे अवसर मिलते हैं, जब किसी उच्च पदस्थ मंत्री ने महिलाओं के अधिकारों और सामाजिक समानता जैसे मुद्दों के लिए स्वेच्छा से सत्ता का त्याग किया हो। अंबेडकर का यह कदम न केवल भारतीय संदर्भ में, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी नैतिक साहस और सिद्धांतनिष्ठ राजनीति का प्रतीक है। यह हमें यह सिखाता है कि यदि शासन व्यवस्था अपने मूल उद्देश्यों समानता, स्वतंत्रता और न्याय से विचलित हो जाए, तो उसके विरुद्ध खड़ा होना ही सच्चे लोकतंत्र और नैतिक नेतृत्व की पहचान है। अंततः, अंबेडकर का यह त्याग भारतीय लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और नारी मुक्ति के इतिहास में एक अमिट और प्रेरणादायक अध्याय के रूप में स्थापित होता है। यह घटना हमें यह समझने में सहायता करती है कि सिद्धांतों पर आधारित राजनीति ही दीर्घकालिक और सार्थक परिवर्तन ला सकती है। उनका यह निर्णय आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि यह हमें यह प्रेरणा देता है कि हम सत्ता, स्वार्थ और तात्कालिक लाभ के बजाय न्याय, समानता और मानवाधिकारों को सर्वोपरि रखें। इस प्रकार, डॉ. अंबेडकर का यह त्याग केवल एक ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि एक नैतिक आदर्श है, जो आने वाली पीढ़ियों को मार्गदर्शन प्रदान करता रहेगा।[28]

(i) कार्यस्थल पर अधिकार और मातृत्व लाभ

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर का दृष्टिकोण महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रश्न को केवल सामाजिक या वैधानिक सुधारों तक सीमित नहीं रखता, बल्कि वह इसे आर्थिक न्याय, श्रम अधिकारों और मानवीय गरिमा के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखता है। अंबेडकर भली–भाँति समझते थे कि यदि महिलाएँ आर्थिक रूप से निर्भर बनी रहेंगी, तो उनकी सामाजिक और व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी सीमित ही रहेगी। इसलिए उन्होंने विशेष रूप से श्रमिक वर्ग की महिलाओं की स्थिति पर ध्यान केंद्रित किया, जो औद्योगिक क्षेत्रों, खदानों, कारखानों और असंगठित क्षेत्र में अत्यंत कठिन परिस्थितियों में कार्य करती थीं। ये महिलाएँ एक ओर कम वेतन, असुरक्षित कार्य वातावरण और लंबे कार्य घंटों का सामना करती थीं, वहीं दूसरी ओर उन्हें मातृत्व, परिवार और समाज से जुड़े दायित्वों का भी निर्वहन करना पड़ता था।[29] अंबेडकर ने इस जटिल स्थिति को समझते हुए यह स्पष्ट किया कि महिलाओं के लिए कार्यस्थल पर समानता और सुरक्षा सुनिश्चित करना केवल एक आर्थिक मुद्दा नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों का प्रश्न है। उन्होंने श्रम नीतियों के निर्माण

में सक्रिय भूमिका निभाई और ऐसे प्रावधानों की वकालत की, जो महिलाओं को न केवल काम करने का अधिकार दें, बल्कि उन्हें सम्मानजनक और सुरक्षित कार्य परिस्थितियाँ भी प्रदान करें। इस प्रकार, उनका दृष्टिकोण समग्र था, जिसमें महिलाओं के जीवन के हर पहलू आर्थिक, सामाजिक और शारीरिक को ध्यान में रखा गया।[30]

(ii) मातृत्व लाभ

अंबेडकर ने मातृत्व को केवल एक जैविक प्रक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक और राष्ट्रीय जिम्मेदारी के रूप में देखा। उनका मानना था कि एक स्वस्थ समाज का निर्माण तभी संभव है, जब माताएँ स्वस्थ, सुरक्षित और आर्थिक रूप से संरक्षित हों। उस समय कामकाजी महिलाओं को गर्भावस्था के दौरान किसी प्रकार की सुरक्षा या सुविधा उपलब्ध नहीं थी। उन्हें अक्सर गर्भावस्था के दौरान भी कठिन परिस्थितियों में काम करना पड़ता था और कई बार उन्हें नौकरी से भी निकाल दिया जाता था, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति और अधिक कमजोर हो जाती थी। अंबेडकर ने इस अन्यायपूर्ण स्थिति को बदलने के लिए मातृत्व लाभ संबंधी प्रावधानों की नींव रखी, जो आगे चलकर मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 जैसे महत्वपूर्ण कानून के रूप में विकसित हुआ।[31] इस कानून का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि महिलाओं को गर्भावस्था के दौरान वेतन सहित अवकाश, चिकित्सा सुविधाएँ, और कार्यस्थल पर आवश्यक सुरक्षा प्रदान की जाए। अंबेडकर का दृष्टिकोण अत्यंत प्रगतिशील था, क्योंकि उन्होंने यह समझा कि यदि महिलाएँ मातृत्व के कारण अपने रोजगार और आय से वंचित हो जाती हैं, तो यह न केवल उनके साथ अन्याय है, बल्कि यह पूरे समाज के विकास में बाधा उत्पन्न करता है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि मातृत्व केवल महिला का व्यक्तिगत मामला नहीं है, बल्कि यह समाज की निरंतरता और भविष्य से जुड़ा हुआ है, इसलिए राज्य और नियोक्ताओं की यह जिम्मेदारी है कि वे महिलाओं को इस दौरान पूर्ण सहयोग प्रदान करें। इस प्रकार, मातृत्व लाभ संबंधी उनके प्रयासों ने महिलाओं को यह विश्वास दिलाया कि वे बिना किसी भय या असुरक्षा के अपने पेशेवर और पारिवारिक जीवन के बीच संतुलन स्थापित कर सकती हैं। यह पहल महिलाओं के स्वास्थ्य, सम्मान और आर्थिक स्थिरता को सुनिश्चित करने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम थी।[32]

(iii) समान कार्य के लिए समान वेतन

डॉ. अंबेडकर ने कार्यस्थल पर व्याप्त लैंगिक भेदभाव को गहराई से समझा और उसे समाप्त करने के लिए "समान कार्य के लिए समान वेतन" के सिद्धांत की जोरदार वकालत की। उस समय की श्रम व्यवस्था में यह सामान्य बात थी कि महिलाएँ पुरुषों के समान कार्य करने के बावजूद कम वेतन प्राप्त करती थीं। यह भेदभाव केवल आर्थिक असमानता ही नहीं, बल्कि महिलाओं की गरिमा और सम्मान के भी विरुद्ध था। अंबेडकर ने इस समस्या को केवल वेतन के अंतर के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे एक व्यापक सामाजिक अन्याय के रूप में समझा।[33] उनका मानना था वेतन का निर्धारण व्यक्ति के लिंग के आधार पर नहीं, बल्कि उसके कार्य की गुणवत्ता, दक्षता और परिश्रम के आधार पर होना चाहिए। यदि महिलाएँ समान कार्य कर रही हैं, तो उन्हें समान पारिश्रमिक मिलना ही चाहिए यह न केवल न्यायसंगत है, बल्कि यह एक लोकतांत्रिक समाज की बुनियादी आवश्यकता भी है। उन्होंने यह भी रेखांकित किया कि जब तक महिलाओं को समान वेतन नहीं मिलेगा, तब तक वे आर्थिक रूप से कमजोर बनी रहेंगी और उनकी सामाजिक स्थिति भी निम्न बनी रहेगी। आर्थिक असमानता सामाजिक असमानता को जन्म देती है, और इस प्रकार महिलाओं का शोषण एक निरंतर चक्र में चलता रहता है। इसलिए समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए अत्यंत आवश्यक है। अंबेडकर का यह दृष्टिकोण आज भी अत्यंत प्रासंगिक है और आधुनिक श्रम कानूनों, नीतियों तथा अंतरराष्ट्रीय मानकों में इसकी स्पष्ट झलक मिलती है। यह सिद्धांत न केवल महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि कार्यस्थल पर समानता, न्याय और सम्मान की संस्कृति को भी प्रोत्साहित करता है।[34]

इस प्रकार, कार्यस्थल पर महिलाओं के अधिकारों और मातृत्व लाभ से संबंधित अंबेडकर के प्रयास यह दर्शाते हैं कि उनका दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक, गहन और दूरदर्शी था। उन्होंने महिलाओं के सशक्तिकरण को केवल एक सीमित सामाजिक मुद्दे के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे एक समग्र परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में समझा, जिसमें कानूनी, आर्थिक, सामाजिक

और नैतिक सभी आयाम शामिल हैं। अंबेडकर के ये प्रयास यह स्पष्ट करते हैं कि वे महिलाओं को केवल अधिकार देने के पक्ष में नहीं थे, बल्कि वे यह भी सुनिश्चित करना चाहते थे कि महिलाएँ उन अधिकारों का वास्तविक और प्रभावी उपयोग कर सकें। उन्होंने ऐसी संरचनाएँ और नीतियाँ विकसित करने पर बल दिया, जो महिलाओं को सुरक्षित, सम्मानजनक और समान अवसर प्रदान करें। अंततः, अंबेडकर का यह योगदान हमें यह सिखाता है कि किसी भी समाज की प्रगति का वास्तविक मापदंड वहाँ की महिलाओं की स्थिति होती है। यदि महिलाएँ सशक्त, स्वतंत्र और सुरक्षित हैं, तो समाज भी समृद्ध और न्यायपूर्ण होगा। इस प्रकार, कार्यस्थल पर महिलाओं के अधिकारों के लिए उनके प्रयास आज भी प्रेरणा का स्रोत हैं और यह हमें एक अधिक समानतामूलक और मानवीय समाज के निर्माण की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।[35]

शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर का यह ऐतिहासिक नारा "शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो" भारतीय समाज में सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों की स्थापना के लिए एक सर्वाधिक प्रभावशाली और क्रांतिकारी विचार के रूप में सामने आता है। यह नारा केवल एक प्रेरणात्मक उद्घोष नहीं, बल्कि एक सुविचारित सामाजिक दर्शन है, जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों के परिवर्तन की स्पष्ट रूपरेखा निहित है। विशेष रूप से महिलाओं, खासकर दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग की महिलाओं के संदर्भ में इस नारे का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि अंबेडकर ने यह गहराई से समझा था कि भारतीय समाज में महिलाओं का शोषण बहुआयामी है जहाँ वे एक साथ जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर दमन का सामना करती हैं। इसलिए उन्होंने महिलाओं को केवल सहानुभूति का पात्र नहीं, बल्कि परिवर्तन की सक्रिय शक्ति के रूप में देखा और उन्हें इस नारे के माध्यम से आत्मनिर्भरता, जागरूकता और संघर्षशीलता की राह पर चलने के लिए प्रेरित किया। अंबेडकर का यह कथन "मैं किसी समुदाय की प्रगति को उस समुदाय की महिलाओं द्वारा की गई प्रगति से मापता हूँ" उनके विचारों की गहराई और व्यापकता को स्पष्ट करता है। यह कथन केवल एक सामाजिक टिप्पणी नहीं, बल्कि एक वैचारिक मानक है, जिसके माध्यम से किसी भी समाज के विकास का आकलन किया जा सकता है। अंबेडकर के अनुसार, यदि किसी समाज की महिलाएँ अशिक्षित, असुरक्षित और निर्भर हैं, तो वह समाज चाहे जितना भी आर्थिक या राजनीतिक रूप से विकसित क्यों न हो, उसे वास्तविक अर्थों में प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार, उन्होंने महिलाओं की स्थिति को समाज की प्रगति का केंद्रीय सूचक माना और यह स्थापित किया कि महिलाओं का सशक्तिकरण ही सामाजिक परिवर्तन की कुंजी है।[36]

"शिक्षित बनो" का आह्वान अंबेडकर के इस नारे का आधारभूत तत्व है, जिसमें उन्होंने शिक्षा को मुक्ति का सबसे प्रभावी साधन माना। उनके लिए शिक्षा केवल पढ़ने–लिखने की क्षमता नहीं थी, बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया थी, जो व्यक्ति को अपनी स्थिति का बोध कराती है, उसे तर्कसंगत सोचने की क्षमता प्रदान करती है और अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस देती है। महिलाओं के संदर्भ में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि शिक्षित महिला न केवल अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होती है, बल्कि वह अपने परिवार और समाज में भी जागरूकता फैलाने का कार्य करती है। अंबेडकर ने महिलाओं से विशेष रूप से यह अपील की कि वे अपने बच्चों चाहे पुत्र हों या पुत्रियाँ दोनों को समान रूप से शिक्षा दें, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ समानता और न्याय के मूल्यों पर आधारित समाज का निर्माण कर सकें। इस प्रकार, शिक्षा को उन्होंने एक पीढ़ीगत परिवर्तन का माध्यम बनाया।[37] "संगठित रहो" का संदेश अंबेडकर के सामाजिक दर्शन में सामूहिक चेतना और एकजुटता के महत्व को रेखांकित करता है। उनका मानना था कि व्यक्तिगत प्रयास सीमित होते हैं, जबकि सामूहिक प्रयास व्यापक और प्रभावशाली होते हैं। विशेष रूप से महिलाओं के संदर्भ में, जो लंबे समय तक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से हाशिए पर रखी गई थीं, संगठन उन्हें एक सशक्त मंच प्रदान करता है, जहाँ वे अपनी आवाज को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर सकती हैं। अंबेडकर ने यह समझा कि पितृसत्ता और जाति व्यवस्था जैसी गहरी जड़ें जमाए संरचनाओं का सामना अकेले व्यक्ति के लिए संभव नहीं हैय इसके लिए सामूहिक संघर्ष और संगठित प्रयास आवश्यक हैं। इसलिए उन्होंने महिलाओं को न केवल सामाजिक संगठनों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया, बल्कि उन्हें राजनीतिक रूप से भी सक्रिय होने का आह्वान किया, ताकि वे नीति–निर्माण की प्रक्रिया में भी अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सकें।[38]

"संघर्ष करो" इस नारे का सबसे सक्रिय और क्रांतिकारी पक्ष है, जिसमें अंबेडकर ने यह स्पष्ट किया कि किसी भी प्रकार का सामाजिक परिवर्तन बिना संघर्ष के संभव नहीं है। उनका मानना था कि इतिहास में जो भी अधिकार प्राप्त हुए हैं, वे संघर्ष के परिणामस्वरूप ही मिले हैं। इसलिए उन्होंने महिलाओं को यह सिखाया कि वे अन्याय, भेदभाव और शोषण के

विरुद्ध निरंतर संघर्ष करें।[39] यह संघर्ष केवल बाहरी सामाजिक संरचनाओं के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि उन आंतरिक मानसिक बंधनों के विरुद्ध भी था, जो महिलाओं को स्वयं को हीन और निर्भर मानने के लिए बाध्य करते हैं।[40] अंबेडकर ने महिलाओं को आत्मसम्मान और आत्मविश्वास के साथ अपने अधिकारों के लिए खड़े होने की प्रेरणा दी और यह बताया कि जब तक वे स्वयं अपने अधिकारों के प्रति सजग नहीं होंगी, तब तक कोई भी बाहरी शक्ति उन्हें सशक्त नहीं बना सकती। अंबेडकर ने विशेष रूप से महिलाओं को घरेलू दासता से मुक्त होने का आह्वान किया। उनका मानना था कि पारंपरिक समाज में महिलाओं को केवल घरेलू कार्यों तक सीमित कर दिया गया है, जिससे उनकी प्रतिभा और क्षमता का पूर्ण विकास नहीं हो पाता।[41] उन्होंने महिलाओं से आग्रह किया कि वे इस सीमित भूमिका से बाहर निकलें, शिक्षा प्राप्त करें, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनें और सामाजिक जीवन में सक्रिय भागीदारी करें। यह केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन की दिशा में उठाया गया कदम था, क्योंकि जब महिलाएँ सशक्त होती हैं, तो वे पूरे समाज को सशक्त बनाती हैं। अंततः, "शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो" केवल एक ऐतिहासिक नारा नहीं, बल्कि एक जीवंत और सतत प्रासंगिक विचारधारा है, जो आज भी सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करती है। यह नारा हमें यह सिखाता है कि शिक्षा के माध्यम से चेतना, संगठन के माध्यम से शक्ति और संघर्ष के माध्यम से परिवर्तन संभव है। डॉ. अंबेडकर का यह संदेश आज के समय में भी उतना ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह हमें एक ऐसे समाज के निर्माण की दिशा में प्रेरित करता है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह महिला हो या पुरुष समान अधिकार, सम्मान और अवसरों का अधिकारी हो। इस प्रकार, यह नारा न केवल महिलाओं के सशक्तिकरण का आधार है, बल्कि एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और प्रगतिशील समाज के निर्माण का मार्गदर्शक सिद्धांत भी है।[42]

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर का नारीवादी दृष्टिकोण केवल सैद्धांतिक या पुस्तकीय नहीं था, बल्कि वह गहराई से संवैधानिक, कानूनी और व्यवहारिक आधारों पर स्थापित था, जिसमें उन्होंने महिलाओं को समानता और स्वतंत्रता दिलाने के लिए ठोस अधिकारों और संस्थागत उपायों की नींव रखी। उन्होंने पितृसत्ता की जकड़न को तोड़ने के लिए महिलाओं को मतदान का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, वैवाहिक न्याय और कानूनी संरक्षण जैसे सशक्त औजार प्रदान किए, जिससे वे न केवल सामाजिक रूप से बल्कि राजनीतिक और आर्थिक रूप से भी सशक्त हो सकें। अंबेडकर का यह विश्वास था कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति महिलाओं की सक्रिय भागीदारी और सशक्त स्थिति के बिना संभव नहीं है, और इसी कारण उन्होंने महिलाओं को राष्ट्र निर्माण की समान भागीदार के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। आज भारत में महिलाएँ जिन विभिन्न उच्च पदों पर आसीन हैं, अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं ले रही हैं और सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रों में अग्रणी भूमिका निभा रही हैं, उसकी आधारशिला कहीं न कहीं अंबेडकर के संघर्ष, दूरदर्शिता और न्यायपूर्ण विचारों में निहित है। उनका यह कथन *"पुरुषों के साथ–साथ महिलाएं भी राष्ट्र की निर्माता हैं, और उनके बिना एक न्यायपूर्ण समाज की कल्पना करना असंभव है"* आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि यह हमें यह स्मरण कराता है कि एक समतामूलक, लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण तभी संभव है, जब महिलाओं को पूर्ण अधिकार, सम्मान और अवसर प्रदान किए जाएँ।

संदर्भ :

1. अंबेडकर, भीमराव रामजी, *भारत में जातियाँ : उनका तंत्र, उत्पत्ति और विकास,* कोलंबिया विश्वविद्यालय प्रकाशन, न्यूयॉर्क, 1916, पृ. 11.
2. ंबेडकर, भीमराव रामजी, *जाति का विनाश,* नवयान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1936, पृ. 26.
3. वही, पृ. 14–15.
4. अंबेडकर, भीमराव रामजी, *राज्य और अल्पसंख्यक,* गवर्नमेंट प्रेस, नई दिल्ली, 1947, पृ. 32–33.

5. अंबेडकर, भीमराव रामजी, *बुद्ध और उनका धम्म,* सिद्धार्थ प्रकाशन, नागपुर, 1957, पृ. 46.
6. कीर, धनंजय, *डॉ. अंबेडकर : जीवन और मिशन,* पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 1990, पृ. 88–89.
7. जाफरेलो, क्रिस्टोफ, *डॉ. अंबेडकर और अस्पृश्यता,* परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली, 2005, पृ. 53.
8. ओम्वेद्त, गेल, *दलित और लोकतांत्रिक क्रांति,* सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ. 61–62.
9. वही, पृ. 39–40.
10. इलैया, कांचा, *मैं हिंदू क्यों नहीं हूँ,* सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ. 71.
11. रेगे, शर्मिला, *जाति लेखन/लैंगिक लेखन,* जुबान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 22–23.
12. चक्रवर्ती, उमा, *जाति का लैंगिकीकरण,* स्त्री प्रकाशन, कोलकाता, 2003, पृ. 18–19.
13. पांडे, राजेश, *भारतीय समाज और नारी,* रावत प्रकाशन, जयपुर, 2008, पृ. 55–56.
14. शर्मा, उषा, *भारतीय नारी का समाजशास्त्र,* रावत प्रकाशन, जयपुर, 2010, पृ. 41–42.
15. सिंह, योगेन्द्र, *भारतीय समाज : संरचना और परिवर्तन,* रावत प्रकाशन, जयपुर, 2012, पृ. 68.
16. दुबे, श्यामाचरण, *भारतीय समाज,* नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2001, पृ. 90–91.
17. देसाई, ए. आर., *भारतीय समाज का समाजशास्त्र,* पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 1994, पृ. 74.
18. बक्षी, उपेन्द्र, *भारतीय संविधान का परिचय,* ईस्टर्न बुक कंपनी, लखनऊ, 2008, पृ. 28–29.
19. ऑस्टिन, ग्रेनविल, *भारतीय संविधान : एक राष्ट्र की आधारशिला,* ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली, 1966, पृ. 101–102.
20. नेहरू, जवाहरलाल, *भारत की खोज,* ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1946, पृ. 121.
21. गांधी, महात्मा, *हिंद स्वराज,* नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1909, पृ. 33.
22. फुले, ज्योतिराव, *गुलामगिरी,* सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1873, पृ. 15–16.
23. फुले, सावित्रीबाई, *शिक्षा संबंधी लेखन,* महिला सेवा प्रकाशन, पुणे, 1890, पृ. 22.
24. रुकैया, बेगम, *सुल्ताना का सपना,* पेंगुइन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1905, पृ. 11–12.
25. देसाई, नीरा, *भारतीय महिला आंदोलन का इतिहास,* पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 1977, पृ. 44.
26. कुमार, राधा, संघर्ष का इतिहास, जुबान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ. 59–60.
27. नंदा, मीरा, *भारत में महिलाएँ और विज्ञान,* ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 37.
28. अग्रवाल, बीना, *अपना एक खेत,* कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रकाशन, कैम्ब्रिज, 1994, पृ. 75.
29. सेन, अमर्त्य, *स्वतंत्रता के रूप में विकास,* ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ. 92–93.
30. संयुक्त राष्ट्र, *महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर अभिसमय,* यूएन प्रकाशन, न्यूयॉर्क, 1979, पृ. 13–14.
31. भारत सरकार, *भारतीय संविधान,* गवर्नमेंट प्रेस, नई दिल्ली, 1950, पृ. 5–6.
32. वही, पृ. 17–18.
33. वही, पृ. 23.
34. वही, पृ. 9–10.
35. वही, पृ. 13.
36. मिश्रा, प्रभा, *नारी और समाज,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ. 48–49.
37. सिंह, योगेन्द्र, *पूर्वोक्त,* पृ. 64.
38. वर्मा, सुधा, *नारी सशक्तिकरण और कानून,* दीप एंड दीप प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 27–28.
39. चक्रवर्ती, उमा, *पूर्वोक्त,* पृ. 36.
40. चौधरी, रीता, *लैंगिक समानता और समाज,* सेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 40–41.
41. पटेल, सुजाता, *भारत में लिंग और विकास,* रूटलेज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 53.
42. जोशी, कल्पना, *महिला अधिकार और भारतीय समाज,* दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ. 30.